यह भ्रम भी दूर कर लेना चाहिए कि दूध की अपेक्षा अण्डा अधिक पौष्टिक होता है। शाकाहार वह कभी हो ही नहीं सकता, यद्यपि किसी को यह विश्वास हो तब भी उसे अण्डा सेवन के दोषों से परिचित होकर, स्वस्थ जीवन के हित इसका परित्याग ही कर देना चाहिए। अण्डे हानि ही हानि करते हैं–लाभ रंच मात्र भी नहीं–यही हृदयंगम कर इस अभिशाप क्षेत्र से बाहर निकल आने में ही विवेकशीलता है। दूध, दालें, सोयाबीन, मूँगफली जैसी साधारण शाकाहारी खाद्य सामग्रियां अण्डों की अपेक्षा अधिक पोष्टिकतत्वयुक्त हैं, वे अधिक ऊर्जा देती हैं और स्वास्थ्यवर्द्धक है। तथाकथित शाकाहारी अण्डों के इस कंटकाकीर्ण जंगल से निकल कर शुद्ध शाकाहार के सुरम्य उद्यान का आनन्द लेना प्रबुद्धतापूर्ण होगा। धर्माचारियों और अहिंसाव्रतधारियों को तो इस फेर में पड़ना ही नहीं चाहिए। अण्डा-अन्ततः अण्डा ही है। किसी के यह कह देने से कि कुछ अण्डे शाकाहारी भी होते हैं–अण्डों की प्रकृति में कुछ अन्तर नहीं आ जाता। अण्डे की बीभत्स भूमिका इससे कम नहीं हो जाती, उसकी सामिषता ज्यों की त्यों बनी रहती है। मात्र भ्रम के वशीभूत होकर, स्वाद के लोभ में पड़कर, आधुनिकता के आडम्बर में ग्रस्त होकर मानवीयता और धर्मशीलता की, शाश्वत जीवन मूल्यों की बलि देना ठीक नहीं होगा। दृढ़चित्तता के साथ मन ही मन अहिंसा पालन की धारणा कीजिए-अण्डे को शाकाहारी मानना छोड़िए। आगे का मार्ग स्वतः ही प्रशस्त होता चला जाएगा।

●●

सुखी जीवन का आधार : व्यसन मुक्ति

–विद्यावारिधि डॉ. महेन्द्र सागर प्रचंडिया
(एम. ए., पी-एच. डी., डी. लिट् (अलीगढ़))

सुखी जीवन का मेरुदण्ड है–व्यसन मुक्ति। व्यसनमुक्ति का आधार है श्रम। सम्यक् श्रम साधना से जीवन में सद्संस्कारों का प्रवर्तन होता है। इससे जीवन में स्वावलम्बन का संचार होता है। स्वावलम्बी तथा श्रमी सदा सन्तोषी और सुखी जीवन जीता है।

श्रम के अभाव में जीवन में दुराचरण के द्वार खुल जाते हैं। जब जीवन दुराचारी हो जाता है तब प्राणी इन्द्रियों के वशीभूत हो जाता है। प्राण का स्वभाव है चैतन्य। चेतना जब इन्द्रियों को अधीन काम करती है तब भोगचर्या प्रारम्भ हो जाती है और जब इन्द्रियाँ चेतना के अधीन होकर सक्रिय होते हैं तब योग का उदय होता है। भोगवाद दुराचार को आमंत्रित करता है जबकि योग से जीवन में सदाचार को संचार हो उठता है।

श्रम जब शरीर के साथ किया जाता है तब मजूरी या मजदूरी का जन्म होता है। श्रम जब मास्तिष्क के साथ सक्रिय होता है तब उपजती है कारीगरी। और जब श्रम हृदय के साथ सम्पृक्त होता है तब कला का प्रवर्तन होता है। जीवन जीना वस्तुतः एक कला है। मजूरी अथवा कारीगरी व्यसन को प्रायः निमंत्रण देती है। इन्द्रियों का विषयासक्त, आदी होना वस्तुतः कहलाता है–व्यसन। बुरी आदत की लत का नाम है व्यसन।

संसार की जितनी धार्मिक मान्यताएँ हैं सभी ने व्यसन मुक्ति की चर्चा की है। सभी स्वीकारते हैं कि व्यसन मानवीय गुणों के गौरव को अन्ततः रौख में मिला देते हैं। जैनाचार्यों ने भी व्यसनों से पृथक रहने का निदेश दिया है। इनके अनुसार यहाँ व्यसनों के प्रकार बतलाते हुए उन्हें सप्त भागों में विभक्त किया गया है। यथा–

"धूतं च मासं च सुरा च वेश्या पापर्द्धिचौर्यं परदार सेवा।
एतानि सप्त व्यसनानि लोके घोरातिघोरं नरकं नयन्ति॥

अर्थात् जुआ, माँसाहार, मद्यपान, वेश्यागमन, शिकार, चोरी, तथा पर-स्त्री-गमन से ग्रसित होकर प्राणी लोक में पतित होता है, मरणान्त उसे नरक में ले जाता जाता है। संसार में जितने अन्य अनेक व्यसन हैं वे सभी इन सप्तव्यसनों में प्रायः अन्तर्मुक्त हो जाता है।

श्रम विहीन जीवनचर्या में जब अकूत सम्पत्ति की कामना की जाती है तब प्रायः द्यूत-क्रीड़ा अथवा जुआ व्यसन का जन्म होता है। आरम्भ में चौपड़, पासा तथा शतरंज जैसे व्यसन मुख्यतः उल्लिखित हैं। कालान्तर में ताश, सट्टा, फीचर, लाटरी, मटका तथा रेस आदि इसी व्यसन के आधुनिक रूप है। द्यूत-क्रीड़ा से जो भी धनागम होता है, वह बरसाती नदी की भाँति अन्ततः अपना जल भी बहाकर ले जाता है। व्यसनी अन्य व्यसनों की ओर उत्तरोत्तर उन्मुख होता है।

वासना बहुलता के लिए प्राणी प्रायः उत्तेजक पदार्थों का सेवन करता है। वह मांसाहारी हो जाता है। विचार करें मनुष्य प्रकृति से शाकाहारी है। जिसका आहार भ्रष्ट हो जाता है, वह कभी उत्कृष्ट नहीं हो पाता। प्रसिद्ध शरीर शास्त्री डॉ. हेग के अनुसार शाकाहार से शक्ति समुत्पन्न होती है जबकि मांसाहार से उत्तेजना उत्पन्न होती है। मांसाहारी प्रथमतः शक्ति का अनुभव करता है पर वह शीघ्र ही थक जाता है। शाकाहारी की शक्ति और साहस स्थायी होता है। प्रत्यक्षरूप से परखा जा सकता है कि मांसाहारी चिड़चिड़े, क्रोधी, निराशावादी और असहिष्णु होते हैं क्योंकि शाकाहार में ही केवल कैलसियम और कार्बोहाइड्रेट्स का समावेश रहता है, फलस्वरूप

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

शाकाहारी प्रायः प्रसन्नचित्त, शान्तप्रिय, आशावादी और सहिष्णु होते हैं। इसीलिए सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से मांसाहार और मांसाहारी सदा अनादृत समझे जाते हैं।

मांसाहारी मद्यपेयी होता है। जिस पदार्थ के सेवन करने से मादकता का संचार हो, उसे मद्य के अन्तर्गत माना जाता है। भांग, गाँजा, चरस, अफीम, चुरूट, सिगरेट, बीड़ी, तम्बाकू, ताड़ी, विस्की, ब्रांडी, शेम्पेइन, जिन, रम्प, पोर्ट, वियर, देशी और विदेशी मदिरा वस्तुतः मद्य ही माने जाते हैं। जैनचर्या तो इस दृष्टि से अत्यन्त सूक्ष्म दृष्टि से विचार करती है। यहाँ बासी भोजन, दिनारू अचार आदि के सेवन न करने के निदेश हैं।

मतिभंग और बुद्धि विनाश का मुख्य कारण है–नशा। शराब का देशज रूप है सड़ाव। साड़ अर्थात् खमीर शराब की प्रमुख प्रवृत्ति है। इसमें दुर्गन्ध आती है, अस्तु वह सर्वथा अभक्ष्य है। इसीलिए संसार के सभी धर्म-प्रवर्तकों, दार्शनिकों तथा आध्यात्मिक चिन्तकों ने मदिरापान की निन्दा की है और उसे पापकर्म का मूल माना है।

शरीर और बुद्धि दोनों जब विकृत और बेकाबू हो जाते हैं तब व्यसनी वेश्यागमन की ओर उन्मुख होता है। महामनीषी भर्तृहरि ने वेश्यागमन को जीवन-विनाश का पुरजोर कारण बताया है। यथा

वेश्याऽसौ मदन ज्वाला रूपेन्धन समेक्षिता।
कामिभिर्यत्र हूयन्ते यौवनानि धनानि च॥

अर्थात् वेश्या कामाग्नि की ज्वाला है जो सदा रूप-ईंधन से सुसज्जित रहती है। इस रूप-ईंधन से सजी हुई वेश्या कामाग्नि ज्वाला में सभी के यौवन धन आदि को भस्म कर देती है।

वेश्या समस्त नारी जाति का लांछन है और वेश्यागामी है कोढ़। विचार करें वेश्यासंसार का जूठन है। इसके सेवन से नाना व्याधियों का जन्म होता है। वेश्यागमन एक भयंकर दुर्व्यसन है।

शिकार का अपरनाम है पापर्द्धि। पाप से प्राप्त ऋद्धि है पापर्द्धि। मकार सेवन अर्थात् माँस, मधु और मदिरा-से जितनी दुष्वृत्तियों का उपचय होता है, उन सभी का संचय शिकार वृत्ति या शिकार खेलने से होता है। शिकारी स्वभावतः क्रूर, कपटी और कुचाली होता है। अपनी विलासप्रियता, स्वार्थपरता, रसलोलुपता, धार्मिक अंधता तथा मनोरंजन हेतु विविध प्राणलेवा दुष्प्रवृत्ति के वशीभूत शिकारी शिकार जैसे भयंकर व्यसन से अपना अधोगमन करता है।

शिकार की नाईं चोरी भी भयंकर व्यसन है। चोर परायी सम्पत्ति का हरण-अपहरण तो कर लेता है पर साथ ही अपना सम्मान, सन्तोष तथा शान्ति-सुख समाप्त कर लेता है। चोरी के अनेक द्वार होते हैं उनमें प्रवेश कर चोर प्रायः अविश्वास और लोभ जैसी प्रवृत्तियों को जगा लेता है। लोभ के वशीभूत होकर चोर मनोवृत्ति व्यक्ति को चालाक और धूर्त भी बना देती है। वह अपने व्यापार और व्यवहार में सर्वथा अप्रामाणिक जीवन जी उठता है। इसका परिणाम बड़ा भयंकर होता है। विचार करें चोरी करने वाले की स्वयं भी चोरी होती जाती है, जिसकी उसे कोई खबर नहीं रहती। उसकी अचौर्यवृत्ति की होती है। उसका चारित्र्य ही चुर जाता है। चौर्य संस्कार परिपुष्ट हो जाने पर इस दुष्प्रवृत्ति को प्राणी कभी आक्रान्त नहीं कर पाता।

पर-स्त्री गमन नामक व्यसन व्यक्ति की कामुक प्रवृत्ति पर निर्भर करता है। सामाजिक और नैतिक दृष्टियों से पर-स्त्री-सेवन अत्यन्त अवैध पापाचार है। यही स्त्रियों के लिए पर-पति- सेवन का रूप बन जाता है। इस व्यसन से व्यक्ति सर्वत्र निंदित होता है। उस पर किसी का विश्वास नहीं रहता। वह अन्तःबाह्य दृष्टियों से प्रायः भ्रष्ट हो जाता है। पर-स्त्री-सेवन और वेश्यावृत्ति में भेद है। वेश्यावृत्ति उन्मुक्त मैथुन की नाली है जबकि परस्त्री बरसाती परनाला। किसी का जूठन सेवन करना पर-स्त्री-सेवन है। यह पशु प्रवृत्ति है। पशुप्रवृत्ति में किंचित संयम रहता है, इसमें उसका भी सर्वथा अभाव रहता है। पुरुष प्रवृत्ति के यह सर्वथा प्रतिकूल है।

इस प्रकार व्यसन व्यक्ति को भ्रष्ट ही नहीं करता अपितु उसे निरा निकृष्ट ही बना देता है। जीव अपनी आत्मिक उन्नति प्राप्त्यर्थ मनुष्य गति की कामना करता है क्योंकि उत्तम उन्नति के लिए प्राणी को संयम और तपश्चरण कर अपनी समस्त इच्छाओं का निरोधन करना पड़ता है। कामना का सामना करना साधारण पुरुषार्थ नहीं है, जो उस पर विजय प्राप्त कर लेता है, वह उत्तरोत्तर विकास के सोपान पर आरोहण करता है। व्यसनी जीवनचर्या में सदा अवरोहण करता है जबकि संयमी करता आरोहण और फिर अन्ततः ऊर्ध्वारोहण।

चारों गतियों में निरन्तर जन्म-मरण के दारुण दुःखों को भोगता रहता है भला प्राणी। उसके भव-भ्रमण का यह क्रम जारी है। सभी पर्यायों में प्राणी के लिए मनुष्य पर्याय श्रेष्ठ है। उसकी श्रेष्ठता का आधार है उसमें शील का उजागरण तथा आत्मिक गुणों के प्रति वन्दना करने के शुभ संस्कारों का उदय। प्रत्येक जीवधारी में जो आत्मतत्व है उसमें समानता की अनुभूति करना अथवा होना वस्तुतः समत्व का जागरण है। सारे पापों और उन्मार्गों का मूल कारण है ममत्व। ममत्व मिटे तब समत्व जगे। ज्ञान, दर्शन और चारित्र की त्रिवेणी इस दिशा में साधक को सफलता प्रदान करती है। इस त्रिवेणी से अनुप्राणित जीवन जीने वाला व्यक्ति सदा सुखी और सन्तोषी जीवन जीता है। उसका प्रत्येक चरण मूर्च्छा मुक्त तथा जाग्रत होता है तब उसका उन्मार्ग की ओर उन्मुख होने का प्रश्न ही नहीं उठता। दूसरी शब्दावलि में इसी बात को हम इस प्रकार कह सकते हैं कि व्यसन मुक्त जीवन सदा सफल और सुखी होता है। जब यही त्रिवेणी सम्यक्चर्या में परिणत हो जाती है तब साधक की साधना मोक्ष मार्ग की ओर अग्रसर होने लगती है। मोक्ष की प्राप्ति चारों पुरुषार्थों की श्रेयस्कर परिणति है। ●●

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org